तृतीय अध्याय

असगर वजाहत का 'सात आसमान' उपन्यास : बदलते मानव का सामाजिक जीवन

''असगर वजाहत का 'सात आसमान' उपन्यास : बदलते मानव का सामाजिक जीवन''

प्रास्ताविक -

समाज मानव-जीवन का अभिन्न अंग है। इसीलिए साहित्यकार की इच्छा होती है कि अपने साहित्य का धरातल समाज हो, सिर्फ कल्पना की उड़ान नहीं। उपन्यासकार असगर वजाहत के संपूर्ण साहित्य का प्रतिपाद्य समाज ही रहा है। उनके साहित्य में झलकनेवाले समाज-जीवन को देखने से पहले हमें यह देखना अत्यंत आवश्यक है कि 'समाज' क्या है। 'मानक हिंदी कोश' में समाज के बारे में लिखा है- ''एक जगह रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का काम करनेवाले लोगों का दल या समूह ही समाज है।''[1] 'भाषा शब्द कोश' में लिखा है- ''समाज, एक स्थान, निवासी तथा समान विचारवाले लोगों का समूह है।''[2] उसी प्रकार 'आधुनिक हिंदी विश्वकोश' में समाज की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''1. संघ, संघात, सभा, परिषद, गोष्टी। 2. मानव-समूह, जनसमुदाय, मंडली, किसी भूखंड में रहनेवाली जनता, जन-समुच्चय, लोक, जन। प्राचीन भारत में सार्वजनिक सभा, उत्सव, समज्या।''[3] संक्षेप में व्यक्ति की सामूहिक इकाई ही समाज है।

मानव और समाज का गहरा संबंध होता है। मानव और समाज को अलग करना उसी तरह है जैसे पेड़ से छाँव को दूर करना। मानव और समाज के परस्पर संबंध के बारे में भीष्म साहनी की टिपण्णी दृष्टव्य है- ''मनुष्य पूर्णतः आत्मनिर्भर नहीं होता। वह अपने परिवेश के साथ सेकड़ों तंतुओं से जुड़ा होता है, वैसे ही सामाजिकता के साथ भी उसका अभिन्न संबंध रहता है। व्यक्ति को समझने के लिए उसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य से अलग करके नहीं देखा जा सकता।''[4] तात्पर्य मानव और समाज के बीच घनिष्ट संबंध चिरकाल से चला आ रहा है। समाज जीवन में

---

1. सं. रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश - खंड-5, पृ. 284
2. सं. डॉ. रमाशंकर शुक्ल - भाषा शब्दकोश, पृ. 1522
3. सं. डॉ. गोविंद चातक - आधुनिक हिंदी विश्वकोश, पृ. 605
4. सं. भीष्म साहनी - मेरे साक्षात्कार (साक्षात्कार सिरीज), पृ. 25

हमेशा परिवर्तन परिलक्षित होता है। समाज पर नई परिस्थितियों, आवश्यकताओं और संबंधों का प्रभाव पड़ने के कारण सामाजिक स्थिति में नूतनता का आना स्वाभाविक ही है। डॉ. मंजुला गुप्ता के अनुसार "मानव की वृत्ति जिज्ञासामूलक होती है। उसका पुरातनता को छोड़ना और नूतनता के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है।"[1] उपरोक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि मानव की जिज्ञासामूलक वृत्ति ही समाज की जीवंतता की निशानी है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में समाज के इस परिवर्तन का विवेचन-विश्लेषण यथार्थता के साथ किया है।

3.1 सामाजिक जीवन के विविध पक्ष -

मानव के सामाजिक जीवन में मुख्यतः धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक, न्यायिक, पारिवारिक आदि विविध पक्षों का समावेश होता है। इनके माध्यम से ही हम समाज को अंतर्बाह्य परख सकते हैं। समाज के इन विविध पक्षों में सदैव परिवर्तन परिलक्षित होता रहता है। मुगलकाल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक मानव के सामाजिक जीवन में बहुमुखी परिवर्तन परिलक्षित होता है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने समाज के इस काल के विविध पक्षों से जुड़ा हुआ मानव-जीवन और उसमें आ रहे परिवर्तन को अपने उपन्यास में यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

3.1.1 बदलते समाज में धर्म-व्यवस्था -

भारतवर्ष में धर्म को समाज का प्राण माना गया तो अतिशयोक्ति न होगी। भारतीय समाज-जीवन में धर्म का अनन्यसाधारण महत्त्व है। धर्म ही समाज को एकसूत्र में बाँधता है, तो अधर्म समाज को विभक्त करता है। धर्म और अधर्म की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए डॉ. के. आर. श्यामला लिखते हैं- "Dharma is that which binds society together. That which divides society, breaks it up in to parts and makes people fight one another is Adharma."[2] स्पष्ट है कि धर्म की छत्रछाया में समाज इकट्ठा होता है। इसी तरह अधर्म समाज को विभक्त करता है, एक-दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न करता है। इसी कारण समाज में

---

1. डॉ. मंजुला गुप्ता - हिंदी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वंद्व, पृ. 36
2. Edited by - Dr. Shashi Tiwari - Indian Religion and Culture, P. 9

मानव ने धर्म की आवश्यकता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि ''धर्म की आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए तर्क-वितर्क करने की जरूरत नहीं है बल्कि धर्म तो मानव प्रकृति का आभ्यंतर तत्त्व है।''[1] इसी कारण प्राचीन काल से धर्म की आवश्यकता पर बल दिया है। परिवर्तनशील युग के साथ इस धर्म में परिवर्तन परिलक्षित होता है। धर्म-व्यवस्था में हो रहे बदलाव को असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकाल से लेकर आज तक के धर्म-व्यवस्था का चित्रण अत्याधिक मात्रा में मिलता है। बादशाह हुमायूँ के काल में उनके साथ आए हुए सैयद इकरामुद्दीन सूफी सिपाही थे। वह तीन महीने के रोजे रखते थे और रात-दिन धर्म-रक्षा और ईश्वर की भक्ति में डूबे रहते थे। उसी वक्त दरबार में फारसी अमीर जो शिया थे और तूरानी अमीर जो सुन्नी थे उनकी दुश्मनी ने विकृत रूप धारण किया था। स्पष्ट है कि उस काल की सामान्य जनता धर्म का कड़ाई से पालन करती हुई नजर आती है, तो उच्च वर्ग में एक ही इस्लाम धर्म की दो जातीयों में आपस में मतभेद बढ़ रहे थे। शिया और सुन्नी की यह दरार सदियों से बढ़ती हुई आ रही परिलक्षित होती है। औरंगजेब ने अपने जीवन में धार्मिक मतभेद को गौण स्थान दिया ''लेकिन दरबार में शिया-दुश्मनी अपने उरूज पर पहुँच चुकी थी।''[2] औरंगजेब की मृत्यु के बाद अपने-अपने मजहब के प्रति दृढ़ता बढ़ता ही गई।

फिरंगियों के भारत में व्यापार के लिए आने के बाद उन्होंने बादशाहों को नशे में ऐसे डूबो दिया कि वह धर्म को ही नहीं अपने आप को भूल गए। उनके मदिरा-मदिराक्षी में दिन-रात डूब जाने से समाज में धर्म का स्थान क्षीण से क्षीणतर होता गया। 'यथा राजा तथा प्रजा' उक्ति के अनुसार सामान्य लोग भी उसी रंग में रंगने लगा था। परिणामस्वरूप मानव की धार्मिक स्थलों के बारे में भी आस्था नहीं रही थी। एक मकबरे और मस्जिद की दयनीय अवस्था का चित्रण दृष्टव्य है- ''मकबरे की छत पर सूखी घास लहराती रहती थी। मकबरे की देखरेख या सफाई न होती थी। मकबरे में कभी-कभी जुआरी अड्डा जमा लेते थे। उसके दर भी खुले हुए थे इसलिए नापाक

---

1. डॉ. एस्. राधाकृष्णन - हमारी संस्कृति, पृ. 6
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 54

जानवर तक अंदर चले जाते थे। मस्जिद भी वीरान-सी लगती थी। उसकी भी देखरेख या मरम्मत न होती थी।''[1]

अंग्रेजों के फौज में हिंदू-मुसलमान दोनों धर्म के सिपाही थे। अंग्रेजों ने भारत में अपनी हुकूमत पक्की करने के लिए उनके धर्म को अपना शस्त्र बनाना चाहा। इन सिपाहियों को अंग्रेजों ने गाय और सुअर की चर्बियुक्त काड़तुसे दे दी, जिन्हें दाँत से तोड़ना पड़ता था। इससे भारतीय सिपाहियों की धार्मिक अस्मिता को धक्का लगा। लेखक लिखते हैं- ''उजड़े हुए लोग जो कंपनी की फौज में भरती हो जाया करते अब किसी भी सूरत में इस बात पर तैयार न होते थे चाहे भूखे ही क्यों न मर जाए।''[2] उपरोक्त उद्धरण से भारतीय मानवजीवन में धार्मिक आस्था और भी दृढ़ होती परिलक्षित होती है। उसी वक्त धर्म और परंपरा के प्रति आदर रखनेवाले आम समाज में असंतोष फैल गया जिसके परिणामस्वरूप 1857 का रणसंग्राम छिड़ गया।

बाद में तो अंग्रेजों ने हिंदू और मुसलमानों में 'फोड़ो और राज करो' की नीति अपनाई। उन्होंने ही उनके बीच सांप्रदायिकता के बीज बोए जिससे हिंदू और मुसलमानों में आपस में द्वेष निर्माण हो गया। लेकिन यह सच्चाई है कि अंग्रेजों के हुकूम के आगे हिंदू-मुसलमानों का धर्म कुछ भी नहीं था। अंग्रेजों का मानना था कि ''तुम दोनों महकूम हो। हम हाकिम हैं, हमारे हुक्म के आगे तुम, तुम्हारा मजहब कुछ नहीं है।''[3]

स्वाधीनता आंदोलन के वक्त कुछ स्वार्थी नेताओं ने धर्म के नाम पर अनेक दलों का निर्माण किया। भारत-पाक विभाजन जैसी घटनाओं के कारण हिंदू-मुसलमानों में दरी बढ़ती ही गई। लेकिन भारतीय आम समाज सदैव एकता और अमन के पक्ष में था। पंडित जवाहरलाल नेहरू भी हिंदू-मुसलमानों के एकतापूर्ण संबंधों के बारे में लिखते हैं कि ''हिंदुओं और मुसलमानों के सामाजिक संबंध कटुतापूर्ण न थे। गाँव के सीमित घेरे के अंदर हिंदुओं और मुसलमानों के गहरे संबंध होते थे।''[4] इसी एकता का दर्शन कथा-नायक के परिवार में भारत-पाक विभाजन के वक्त दिखाई देता है। लेखक लिखते हैं- ''बटवारे के बाद अतराफ से मारकाट की खबरें यहाँ आ रही

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 58
2. वही, पृ. 59
3. वही, पृ. 152
4. जवाहरलाल नेहरू - हिंदुस्तान की कहानी, पृ. 364

थीं। आसपास के शहरों में फसाद हो गए थे। एक दिन बड़ा शोर था कि यहाँ भी फसाद होगा। नीचे मोहल्ले में जो लोग रहते थे सब अपने बाल-बच्चों और कीमती सामान को लेकर किले पर आ गए थे। इनमें हिंदू-मुसलमान सब शामिल थे। चमार, बेलदार, भड़भूँजा, तेली, नाई जो भी नीचे मोहल्ला में था ऊपर आ गया था। दो-चार घर शेखों के थे। वे भी ऊपर आ गए थे।''[1]

आज पारिवारिक स्तर पर ही सही हिंदू-मुसलमान अपने-अपने धर्म के आचारों को बरकरार रखते हुए आपस में मैत्रीपूर्ण, सौहार्दपूर्ण संबंधों को अपना रहे हैं। डॉ. सिद्धेश्वर सही कहते हैं कि ''हिंदू-मुस्लिम एकता एक कोमल पौधे जैसी है। इसे हमें लंबे अरसे तक बड़े ध्यान से पालना होगा, क्योंकि हमारे दिल अभी उतने साफ नहीं हैं, जितने होने चाहिए।''[2] कथा-नायक के दादाजी अब्बा-मियाँ के अनेक हिंदू-दोस्त थे। त्यौहार या अन्य वक्त जब भी वह घर आते थे उनके लिए अब्बा मियाँ हिंदू रसोइया के द्वारा अलग खाना बनाते थे। वह इस बात को सही समझते थे कि हिंदू मुसलमान के हाथ का न खायें। ''अगर कोई हिंदू उनसे यह कह देता था कि वह मुसलमान के हाथ का छुआ नहीं खाता, उन्हें यह बूरा तो क्या बहुत ही उचित लगता था और उसकी खातिरदारी हिंदू रसोइया करता था।''[3] अब्बा मियाँ और उनके हिंदू दोस्तों में खाना खाने या पानी पीने की वजह से कोई फर्क नहीं पड़ता था। उनके दोस्तों में पंडित, ठाकुर और जमींदारों का समावेश होता था जो अपने अंतर्जातीय मैत्रीपूर्ण संबंधों के प्रतीक हैं।

उपरोक्त विवेचन और विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्षतः कहना सही होगा कि भारतीय सानाजिक व्यवस्था मूलतः धर्म पर आधारित है। समाज में धार्मिक नियमों का पालन करना अनिवार्य माना जाता है। अंग्रेजों ने धार्मिक विद्वेष का निर्माण किया जो आज तक चलता आ रहा है। इस विद्वेष को कुछ स्वार्थी लोग बढ़ावा देते हैं। उन स्वार्थी लोगों के अलावा एक आम समाज है जो सदैव अमन और सांप्रदायिक एकता का हिमायती रहा है।

3.1.2 बदलते समाज में वर्ग-व्यवस्था -

भारतीय समाज-रचना में वर्ग-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। समाज के सदस्यों के कुछ विशिष्ट गुणों के कारण वर्ग व्यवस्था दिखाई देती है। इस विशिष्ट गुणों में अर्थ-

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 155
2. सं. डॉ. सिद्धेश्वर - 'विचारदृष्टि' - त्रैमासिक, अक्तूबर-दिसंबर, 2003, अंक-7, पृ. 4
3. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 50-51

विभाजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है भारतीय समाज-रचना में वर्ग-विभाजन का आर्थिक कारण बताकर उसकी कारणमीमांसा करते हुए डॉ. पूरनचंद्र जोशी लिखते हैं- ''उच्च जातियें के पास प्रारंभ से ही अधिक उत्पादक धंधे स्थित होने के कारण प्रारंभ से ही अर्थ का विषम बँटवारा होता गया। उच्च जाति के लोग अधिक आय के कारण उच्च-वर्ग में और निम्न जातियाँ निम्न वर्ग में स्थित हुई।''[1] भारतीय समाज की यह विशेषता मानी जाए या बुराई की वर्ग-व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर आज तक किसी-न-किसी रूप में चली आ रही है। असगर वजाहत के उपन्यास में वर्ग-व्यवस्था का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

'सात आसमान' उपन्यास में ज्यादातर दो वर्ग- उच्च और निम्न का ही अधिक मात्रा में चित्रण दृष्टिगोचर होता है। मुगल काल में उच्च वर्गों में बादशाह, वजीर, दरबारी, बड़े जमींदार और पंडितों का समावेश होता है। जो निम्नवर्गीय किसान, खेतीहर आदियों का अनेक मार्गों से शोषण करते हैं। अवध के बादशाह रंग-रंगिलियों में मस्त रहने के कारण दरबारियों ने सारे राज्य को लुटना शुरू किया था। दरबार के वजीर मौतमुद्दौला के खजाने में तो इतनी संपत्ती इकट्ठी हुई थी कि जितनी शासन के खजाने में नहीं थी। इसी तरह की लुट के परिणामस्वरूप निम्नवर्गीय लोगों की दयनीयता देखने लायक हो गई थी- ''मुल्क का हाल बदतर हो गया था। गेहूँ रुपए का दस सेर बिकने लगा था, जबकि नवाब सआदतअली खाँ के जमाने में कभी बीस सेर से कम न बिका था। गरीब-गुरबा आटे के लिए तरसने लगे। हर तरह हाहाकार मच गया। हर तरफ बदहाली थी।''[2] स्पष्ट है कि मुगलकाल में सामंती वर्ग के स्वार्थ नीति के कारण ही वर्ग-विभाजन की प्रवृत्तियों का विकास हुआ दृष्टिगोचर होता है।

भारत में जैसे-जैसे अंग्रेजों ने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत की वैसे-वैसे मुगलों का असर कम होता गया। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए बड़े जमींदारों को प्रोत्साहन देना शुरू किया। भारत के इतिहास में जमींदारी व्यवस्था बहुत ही दर्दनाक सच है। किसानों और खेतीहरों से लगान वसुल करने के लिए अंग्रेजों ने इसका निर्माण किया था। यह वर्ग अंग्रेजों को खुश करने और उनकी नजरों में अपनी हैसियत जमाने के लिए किसानों से बहुत ही सख्ती से

---

1. डॉ. पूरनचंद्र जोशी - भारतीय ग्राम : सांस्कृतिक परिवर्तन और आर्थिक विकास, पृ. 13
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 125

लगान वसुल करते थे। एक उदाहरण दृष्टव्य है - ''अली खाँ बहुत सख्त किस्म के आदमी थे। लोगों पर जुल्म करते उनकों दया न आती थी। कंपनी लगातार लगान की दरें बढ़ाती जाती थी और अली एक-एक पाई वसूल कर लेते थे। जो जमींदार मालगुजारी न दे पाते थे उनका सामान तक नीलाम करा देते थे। जानवर तक हँकवा लेते थे। औरतों के जेवर तक जब्त कर लेते थे।''[1] उपरोक्त उद्धरण से उच्चवर्गीयों द्वारा निम्नवर्गियों का हुआ शोषण दृष्टिगोचर होता है। इस काल से उच्च और निम्न वर्ग का भेद बढ़ता ही गया।

भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद जमींदारी उन्मूलन यह एक वर्गीय समानता की दृष्टि से कुछ हद तक क्रांतिकारी कदम था, किंतु जमींदारों ने इसमें भी अपनी चालाकी का परिचय दिया- ''जहाँ तक जमीनों के पट्टे अपने अजीजों के नाम करने की बात थी आम तौर पर जमींदार किसानों को जमीन से बेदखल करके जमीन के पट्ठे अपने या रिश्तेदारों के नाम कर रहे थे।''[2] स्पष्ट है कि इसी कारण ही अनेक प्रावधानों के बावजूद भी अब तक सामंतयुगीन प्रवृत्ति का अंत नहीं हो पाया है।

जमींदारी खत्म होने पर औद्योगीकरण बढ़ गया और पूँजीवादी युग का आरंभ हुआ जिसने मध्यवर्ग को जन्म दिया। उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के परिवर्तनशील रूप का चित्रण मिलता है। उच्च वर्ग में कथा-नायक के नाना-जो कभी बहुत बड़े रईस माने जाते थे; जिन्होंने अपनी ऐयाशी की पूर्ती के लिए सारी संपत्ति लुटा दी थी। लेखक लिखते हैं- ''नाना बिलकुल उड़ाऊ-खाऊ थे। बांड बेच-बेचकर काम चलाते रहे। उसके बाद आमदनी का सहारा वसीके का हिस्सा था। वसीके के अलावा नाना को तरके में कुछ दुकानें और मकानात भी मिले थे। जब पैसे की ज्यादा जरूरत होती थी तो नाना जायदाद में से कुछ बेच डालते थे।''[3] मध्य वर्ग का नौकरीपेशा वर्ग अनेक संभावनाओं के कारण शहरों की ओर आकृष्ठ हो रहा था तो निम्न वर्ग की हालत में अभी तक कोई सुधार नहीं है। निम्न वर्ग की इस हालत के लिए वह खुद जिम्मेदार है। मैकू का एक कथन दृष्टव्य है- ''मैकू के खर्च बढ़े हुए थे। हालाँकि उसे कोई

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 57
2. वही, पृ. 153
3. वही, पृ. 207

वैसी बुरी आदत न थी लेकिन एक तो खानदान बड़ा था, दूसरे उसने एक कंजड़िन से याराना गाँठ रखा था, तीसरे उसे घड़ी, ट्राँजिस्टर जैसी चीजों का शौक था।''[1] अतः उपर्युक्त उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के विवेचन विश्लेषण से विदित होता है कि उच्च वर्ग की अकर्मण्यता के कारण उनकी चली आई पूँजीवादी परंपरा की नींव ढह रही है। मध्य वर्ग शहरों में अपनी किस्मत आजमा रहा है, तो निम्न वर्ग की अपनी बुरी आदतों और पारिवारिक समस्याओं के कारण प्रगति की कोई दिशा नजर नहीं आ रही है।

3.1.3 बदलते समाज में अर्थ-व्यवस्था -

भारतीय समाज-रचना में अर्थ को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रधान स्थान रहा है। समाज में जो भी घटनाएँ घटीत होती हैं वह सब 'अर्थ' से प्रभावित दृष्टिगोचर होती हैं। 'अर्थ' के बिना जीवन में अर्थ नहीं है। इसलिए ही डॉ. राजबली पांडेय ने ''धर्म को आत्मा के विकास का साधन मानते हुए अर्थ को जीवन विकास का साधन माना गया है।''[2] अर्थकेंद्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण 'अर्थ' ही होता है। डॉ. रमेश देशमुख लिखते हैं- ''किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति से निश्चित किया जाता है।''[3] स्पष्ट है कि आज अर्थ व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरूदंड़ बन गया है। भारतीय इतिहास में अनेक घटनाएँ घटीत हुई हैं जो ज्यादातर अर्थ से प्रभावित थीं। जिससे भारतीय अर्थ-व्यवस्था में समयानुसार अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में इस बदलते परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अर्थ-व्यवस्था पर दृष्टिक्षेप डालने का प्रयास किया है।

'सात आसमान' उपन्यास के मुगलकालीन राजा, वजीर, दरबारी, जमींदार, पंडित और उनके निकटवर्ती लोगों के हाथों में ही सारी संपत्ति इकट्ठी हुई परिलक्षित होती है। पैसा उड़ाना और ऐयाशी करना वह अपना अधिकार समझते थे। दारिद्रय, अन्याय, अत्याचार से पीड़ित जनता को पेट पालना मुश्किल हो गया था तो उनका शोषण करनेवाला वर्ग अमाप संपत्ति का मालिक बन गया था। अवध दरबार के वजीर मौतमुद्दौला ने कुटनीति से आम जनता को चुसकर,

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 180
2. डॉ. राजबली पांडेय - भारतीय नीति का विकास, पृ. 2
3. डॉ. रमेश देशमुख - आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवनमूल्य, पृ. 110

समाज में आतंक फैलाकर और राजनीतिक दावपेंचों के द्वारा अमाप संपत्ति जमा की थी। उसे जब दंड़स्वरूप सारी संपत्ति के साथ शहर से बाहर निकाल देने का आदेश हुआ तब उसके पास की संपत्ति का चित्रण दृष्टव्य है- ''उनके पास बेहिसाब दौलत थी। छः महीने इस इंतिजाम में निकल गए कि मालो-दौलत को कैसे, कहाँ ले जाया जाए। सैकड़ों छकड़े खरीदे गए। हजारों घोड़े, ऊँट और हाथी हासिल किए गए। सामान बाँधने का सिलसिला भी महनों चलता रहा।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से अर्थ-व्यवस्था का विसंगत विभाजन दृष्टिगोचर होता है।

जब भारतीय समाज-व्यवस्था में अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ता गया तब उनके कृपा-आशीर्वाद से बड़े-बड़े जमींदार फलते-फुलते गए। उनके पास पैसों की भरमार होती थी। उनके पास इतना पैसा होता था कि उनकी नजरों में पैसों की कोई अहमियत न रह गई थी। जत्तन मियाँ का सबसे प्यारा शौक पैसा खर्च करना था- ''पैसा इस तरह खर्च करते थे कि पैसा उनसे पनाह माँगता था। एक बार चाँदी का एक रुपया उनकी जेब में कई दिन पड़ा रह गया। आखिरकार उन्होंने झुँझलाकर उसे तालाब में फेंक दिया और कहा, 'पता नहीं किस साले कंजूस का रुपया था, खर्च ही नहीं हो रहा था।' ''[2]

भारत को स्वाधीनता मिलने के साथ-साथ जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया। जिससे समाज के बड़े जमींदार वर्ग की आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ, लेकिन आदमी आदतों का गुलाम होता है। पैसा उड़ाना और फालतु बातों पर पैसे खर्च करने की आदत को वह छोड़ नहीं पा रहे थे - ''पैसा न होता था तो कर्ज लिया जाता था। कर्ज बढ़ जाता था तो जमींन का एक टुकड़ा या कोई चीज बेच डाली जाती थी।''[3] जीवनभर कीमती घड़ियों और गाड़ियों का शौक रखनेवाले और हमेशा लखनऊ जाकर बाल कटवानेवाले बड़े आगा अपनी ऐयाशी के लिए सबकुछ बेच डालते हैं। परिणामस्वरूप जीवन के अंतिम दिनों में उनकी दयनीय अवस्था हो जाती है। अतः कहना गलत न होगा कि अंग्रेजों ने तो भारत को अपने से अलग कर दिया; किंतु अकर्मण्य

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 140
2. वही, पृ. 66
3. वही, पृ. 143

सामंतवादी प्रवृत्तियों से यह जमींदार वर्ग अपने को अलग न कर सका। विरासत में मिली अर्थ-सत्ता को सामंतवादी वर्ग श्रम के प्रति उदासिनता के कारण संभाल नहीं पा रहा दृष्टिगोचर होता है।

3.1.4 बदलते समाज में न्याय-व्यवस्था -

भारतीय समाज-रचना में समाज व्यवस्था को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए न्याय-व्यवस्था का निर्माण हो गया है। न्याय-व्यवस्था में अन्याय होनेवाले समाज या व्यक्ति को न्याय देना और अपराधियों को दंड़ देने का प्रावधान होता है, लेकिन ह्रासजन्य नैतिकता के कारण हमेशा न्याय-विभाग की स्थिति सोचनीय परिलक्षित होती है। डॉ. शशि जैकब कहती है- ''नैतिक संस्खलन ने न्याय-विभाग को निष्प्राण बना दिया है।''[1] इसी कारण आज कानून पर किसी को विश्वास नहीं रह गया है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में न्याय-प्रणाली की परिवर्तनीय स्थिति को चित्रित किया है।

'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकालीन दरबार में शिया और सुन्नी दो गुट दृष्टिगोचर होते हैं। ये गुट एक-दूसरे किसी की भी गलती होने पर द्वेष के कारण उसे कठोर दंड़ देने के पक्ष में थे। बादशाह हुमायूँ के दरबार में सल्तनत के वकील बैरम खाँ थे। अफगानों के साथ हुई लड़ाई में मुगल फौज का नेतृत्व तरदी बेग ने संभाला था जो बैरम खाँ का दुश्मन था। दुर्भाग्य से मुगल फौज हार जाती है और तरदी बेग भाग आता है। इस वक्त बैरम खाँ तरदी बैग पर इल्जाम लगाता है वह जान-बूझकर भाग आया है। ''इस जुर्म में बैरम खाँ ने बिना बादशाह से पूछे तरदी बेग को फाँसी पर लटका दिया।''[2] उक्त उद्धरण से उस काल में सिर्फ आपसी द्वेष भाव से न्याय का गलत इस्तेमाल किया हुआ परिलक्षित होता है। मुगलकाल में जघन्य अपराध के लिए विशिष्ट ढंग से दंड़ देने की भी प्रथा दिखाई देती है। गाजीउद्दीन हैदर के बेगम की स्व्वास सुबह दौलत को राजशिष्टाचार के खिलाफ किए गए कृत्य के दंड़स्वरूप अनंत यातनाएँ देकर हलाल करके मार दिया जाता है।

अंग्रेज शासनकाल में अंग्रेजों ने निरापराध लोगों को सजाएँ देकर आतंक जमाना शुरू किया ताकि अंग्रेज सत्ता की जड़ें पक्की हो जाएँ। स्वतंत्रता संग्राम में तो उन्होंने विरोधी

---

1. डॉ. शशि जैकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 177
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 53

हजारों आंदोलनकारियों को मार डाला। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए न्याय-व्यवस्था का मनचाहा इस्तेमाल किया जिससे न्यायव्यवस्था में काफी गिरावट आई।

स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों के आशीर्वाद के कारण जमींदारों ने भी कानून को अपने हाथ में लिया था। उन्हें पूछनेवाला कोई नहीं था। वह अपनी जमींदारी बचाने के लिए छोटे-छोटे गुनाह के लिए भी सख्त-से-सख्त सजाएँ देते हुए दिखाई देते हैं। रजी हुसैन खाँ के कारिंदे की गलती पर गाँववालों ने उसे एक काठी मारी। यह बात रजी हुसैन खाँ को मालुम होते ही "उन्होंने मेवातियों से उस पूरे गाँव को लुटवाकर उसमें आग लगवा दी।"[1] स्पष्ट है कि प्राचीन काल से निम्न वर्ग न्याय के लिए तरसता दिखाई देता है।

स्वतंत्रता के बाद आज रोज एक-से-एक जघन्य अपराध हमारे सामने हो जाते हैं और अपराधी निर्दोष मुक्त हो जाते हैं। इसलिए कि न्याय-व्यवस्था में वकिलों के साथ-साथ एक ऐसा वर्ग तैयार हो रहा है जो चंद पैसों के लिए कानून के साथ खिलवाड़ करता है। मुंशी शरीफुल के बारे में लेखक का कथन दृष्टव्य है- "मुंशीजी की बड़ी साख थी। जाली दस्तावेज बनवाने, गवाहों को तोड़ने, गवाही देने या गवाह दिलवाने, फाइलें गायब कराने और दीगर तिड़ीबाजी के कामों में बड़े-बड़े उनका लोहा मानते थे।"[2] निष्कर्षतः कहना गलत न होगा कि भारतीय समाज-रचना में स्थित न्याय प्रणाली को ही आज तक सही मायने में न्याय नहीं मिला है, और सामान्य जनता की बात तो दूर ही है। इसलिए पहले न्याय-विभाग की प्रक्रिया में ही सुधार की आवश्यकता है। तभी आम जनता उससे न्याय की आशा कर सकती है।

3.1.5 बदलते समाज में शिक्षा-व्यवस्था -

मानव-जीवन में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। "शिक्षा मानव जीवन में एक नवीन क्रांति उत्पन्न कर देती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य शिष्ट एवं व्यवहार कुशल बनता है। इस प्रकार शिक्षा सर्वभावेन मानव विकास में सहायक है।"[3] स्पष्ट है कि ज्ञान के साथ-साथ समाज को सुसंस्कृत बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा के माध्यम से किया जाता है। भारतीय शिक्षा-व्यवस्था

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 37
2. वही, पृ. 101
3. डॉ. भक्तराज शास्त्री - आधुनिक हिंदी काव्य और संस्कृति, पृ. 175

में ज्ञान के साथ-साथ विवेकजन्य जीवनमूल्यों को महत्त्व देने की परंपरा रही है किंतु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में इन मूल्यों का ह्रास हो रहा हुआ परिलक्षित होता है। इसके प्रति खेद व्यक्त करते हुए डॉ. प्रफुल्ल कोलख्यान लिखते हैं- ''हमारी शिक्षा-व्यवस्था में विज्ञान के विषयों को तो जगह मिली है लेकिन विज्ञान-सम्मत विवेक को व्यक्तित्व के संस्कार का हिस्सा बनाने पर उतना जोर नहीं दिया गया है।''[1] अतः 'विद्या विनयेन शोभते' उक्ति के अनुसार, शिक्षा के साथ-साथ मानव में विनय और विवेकजन्य मूल्यों का होना जरूरी है। तभी मानव-जीवन में सही अर्थ में क्रांति हो जाएगी। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में बदलते कालक्रमानुसार समाज में स्थित शिक्षा-व्यवस्था के स्वरूप को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकाल में शिक्षा प्रणाली का स्वरूप ना के बराबर दिखाई देता है। ब्रिटिश काल में अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए शिक्षा को बढ़ावा दिया। सामंतियों को तो अंग्रेजी शिक्षा का ज्ञान न होना बहुत बड़ा अपमान लगने लगा था। कथा-नायक के दादाजी अब्बा मियाँ अंग्रेज सरकार के नियुक्त किए हुए ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे। उन्हें अंग्रेज अफसरों के साथ उठना-बैठना पड़ता था और अंग्रेजी न आने के कारण वह परेशान हो गए थे। ''उन्हें लगता था कि अपनी इज्जत करानी है तो थोड़ी बहुत अंग्रेजी आना जरूरी है।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से सामंती वर्ग अंग्रेजों के साथ अपने संबंध दृढ़ करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा को अपनाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

वर्तमान समाज में धार्मिक कट्टरता इतनी तीव्र हो गई है कि जिसकी चोट से शिक्षा-क्षेत्र भी अनछुआ नहीं रह गया है। आज शिक्षा से ज्यादा धर्म को महत्त्व दिया हुआ नजर आता है। जत्तन मियाँ जब चौथी में थे तब क्लास में किसी ईसाई मास्टर ने उनके इस्लाम धर्म के विरोध में कुछ ऐसी-वैसी बात कह दी। ''इसके जवाब में जत्तन मियाँ ने उसे क्लास के अंदर ही उठाकर पटक दिया और उसका एक हाथ तोड़ दिया।''[3] उपरोक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि आज धर्म के प्रति हर बूढ़े-बच्चे के दिल में इतनी आसक्ति निर्माण हो गई है कि जिससे शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में भी नैतिक मूल्य-पतन हो रहा हुआ दिखाई देता है।

---

1. सं. कुसुम खेमानी - 'वागर्थ', मासिक पत्रिका, अक्तूबर-2003, अंक-99, पृ. 59
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 33
3. वही, पृ. 65

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था अनेक समस्याओं से प्रभावित दिखाई देती हैं। उच्चवर्गियों के हस्तक्षेप से आज की शिक्षा-व्यवस्था कमजोर होती जा रही है। अब्बा मियाँ ने गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेडमास्टर को अब्बा के फेल होने के बाद भी अगले क्लास में लेने के लिए खत लिखा था। ऐसा करने का सबसे बड़ा कारण यह लिखा था कि ''वे ऊँचे शरीफ और जमींदार खानदान के लड़के हैं।''[1] स्पष्ट है कि यह लोग उच्चवर्गीय होने के प्रमाणपत्र के आधार पर शिक्षा-क्षेत्र में गैरव्यवहार करते हैं जिससे सारे समाज को अनेक समस्याओं, यातनाओं को भुगतना पड़ता है। शिक्षा क्षेत्र में भ्रष्टता के साथ-साथ शिक्षित बेरोजगारी की समस्या ने विकृत रूप धारण किया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में जमींदारी उद्योग, व्यापार आदि क्षेत्रों पर भरोसा न रहने के कारण उच्च-वर्ग भी शिक्षा के प्रति आकृष्ठ दिखाई देता है। कथानायक भी अपनी खानदानी जमींदारी छोड़कर शिक्षा ग्रहण करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

वर्तमान शिक्षा-क्षेत्र में रँगिंग जैसी घिनौनी विकृतियों का पनपना बढ़ रहा है। महाविद्यालयों में नए आनेवाले छात्रों के साथ पुराने छात्र गैरव्यवहार करते हैं, जिससे नए छात्रों पर बहुत बड़ा आघात होता है। कथा-नायक और उनके भाई भी अलीगढ़ विश्वविद्यालय में रँगिंग की चपेट में आ जाते हैं। रँगिंग का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं - ''ज्युनियर लड़कों को एक कमरे में बंद कर दिया गया था और एक-एक को इस तरह बाहर ले जाया जाता था जैसे- 'हलाल' करने ले जाया जा रहा हो। ज्युनियर लड़के एक कमरे में डरे-सहमें बैठे रहते थे। बाहर लॉन में खिंचाई किए जाने की आवाजें और गालियाँ अंदर तक सुनाई देती थीं और हम लोग सहम जाते थे।''[2]

3.2 बदलता समाज : पारिवारिक जीवन -

लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास साहित्य में बदलते समाज के परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक स्थिति के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ चित्रण किया है। यहाँ परिवर्तित पारिवारिक स्थिति का विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत है -

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 219
2. वही, पृ. 176

3.2.1 बदलते समाज में पति-पत्नी -

परिवार समाज-रचना की महत्त्वपूर्ण ईकाई है। परिवार में पति-पत्नी का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। ''पति और पत्नी में संबंध, जगत् में खासकर मानव समाज में, अप्रतिम है।''[1] समाज के विकास में इस दांपत्य का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। ''दांपत्य संपूर्ण सामाजिक गतिविधियों का केंद्र है। वही से सामाजिक विकास की शक्तियों का उदय और उनका प्रसरण होता है।''[2] लेकिन जब इस दांपत्य संबंधों में विचार-भिन्नता के कारण दरारे निर्माण होती हैं तो समाज की अन्य मान्यताओं में भी परिवर्तन आता है। कुसुम अंसल के अनुसार - ''दो विरोधाभासी असंगतियों में वैवाहिक जीवन ही नहीं, अन्य मान्यताएँ भी लड़कड़ाने लगती हैं।''[3] स्पष्ट है कि पति-पत्नी संबंधों से सामाजिक वातावरण प्रभावित रहता है। असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में बदलते पति-पत्नी संबंधों का वास्तव चित्रण किया है।

'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकालीन अवध के नवाब गाजीउद्दीन हैदर अनेक सुंदरियाँ और रंग-रंगीलियों में दिन-रात डूबे रहते थे। उनकी बेगम बादशाह से मिलने के लिए महीनों तरसती थी। लेखक ने बेगम की व्यथा को वाणी दी है। बेगम कहती है, ''हुजूर ने तो हमारी तरफ से ऐसे आँखें फेर ली हैं कि हम दीदार को तरसते हैं। सरकार आठों पहर बाद-ए-गुलफाम में दिले-आशिक की तरह सरशार रहते हैं।''[4] स्पष्ट है कि उच्च वर्ग अनेक औरतों के साथ रति-क्रिड़ा में रत रहने के कारण उस काल में पति-पत्नी संबंधों की सबसे बड़ी विड़ंबना हुई दृष्टिगोचर होती है।

अंग्रेजकालीन रखैल प्रथा के कारण पति की पत्नी के प्रति एकनिष्ठा न होने के कारण पारिवारिक तनावपूर्ण संबंधों का चित्रण भी हुआ है। जत्तन मियाँ ने पत्नी होते हुए भी सत्ती नाम की रखैल को रखा था और वह उसके साथ ही ज्यादा वक्त गुजारते थे। मुश्ताक के अनुसार ''जत्तन मियाँ ने बड़ी बहू को सिर्फ अच्छे खानदान और नस्ल की औलादें पैदा करने के लिए रख छोड़ा था। बाकी दूसरे कामों के लिए सत्ती थी।''[5] उपरोक्त उद्धरण से जत्तन मियाँ की पत्नी

---

1. डॉ. आशा बागड़ी - प्रेमचंद-परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन, पृ. 114
2. सं. डॉ. कामता कमलेश - 'हिंदी अनुशीलन', त्रैमासिक पत्रिका, सितंबर-दिसंबर, 2001, पृ. 26
3. कुसुम अंसल - आधुनिक हिंदी उपन्यासों में महानगर, पृ. 98
4. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 126
5. वही, पृ. 77

अपने अधिकार से वंचित परिलक्षित होती है। अंग्रेजकाल में पुरुषी मानसिकता की प्रधानता के कारण पति कुछ भी कर सकता था लेकिन पत्नी ने अनेक बंधनों का स्वीकार करना अनिवार्य माना जाता था।

अतीत की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर समाज-जीवन के पति-पत्नी संबंधों में काफी हद तक सुधार आया है। इसके मूल में भी पत्नी की कर्तव्यनिष्ठा ही दृष्टिगोचर होती है। कथा-नायक की माँ अपने ससुर के बढ़ते खर्चों को देखते हुए चिंतित हो जाती है। वह अपने बच्चों के भविष्य के बारे में चिंतित होकर अपने पति से कहती है- ''लड़के बड़े हो रहे हैं। इनको पढ़ने के लिए भेजना होगा। पैसा कहाँ से आएगा।''[1] अब्बा भी अपने पत्नी का कहना मानकर कुछ पैसा बचा लेते हैं। अम्मा को पैसा खर्च करना बुरा लगता था। अब्बा के पास खेती के जितने भी पैसे जमा हो जाते थे वह अम्मा के पास रखते थे। छोटी-मोटी हर बातों के लिए वह अम्मा से सलाह करते थे। अम्मा की समझदारी और अब्बा का अपनी पत्नी पर होनेवाला विश्वास ही उनके बेटों के कामयाबी की बुनियाद बन जाती है। अतः कहना सही होगा कि पत्नी को आज के समाज में उतना ही हक मिल रहा है जितना पति को मिलता है लेकिन उसके पीछे उसके धैर्य, संयम, सहनशिलता और श्रम का बड़ा योगदान रहा है। पत्नी अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सतर्क हो रही है जो समाज के उज्ज्वल भविष्य की नींव है।

3.2.2 बदलते समाज में पिता-पुत्र -

उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में बदलते पिता-पुत्र संबंधों का यथार्थ चित्रण किया है। मुगल काल में बादशाह दिन-रात रंग-रंगीलियों में मस्त रहने के कारण उनका अपनी संतान के प्रति कोई स्थान नहीं था। उस काल में पिता-पुत्र संबंध औपचारिक तौर पर ही निभाए जाते थे। अतिरिक्त छूट और अनियंत्रण के कारण पुत्र भी अपने पिताजी की तरह उनके पैरों पर पैर डालते हुए चलते थे। बदलते समय के साथ-साथ इन संबंधों में काफी मात्रा में सुधार होने लगा। यह संबंध औपचारिकता से ऊपर उठकर उनका स्थान प्यार, कर्तव्यादि बातों ने ले लिया। पिता अपने पुत्र के प्रति होनेवाले कर्तव्यों के साथ परिचित होने लगा। 'सात आसमान' उपन्यास में अब्बा मियाँ की अब्बा एकलौती संतान थी इसलिए वह पूरे परिवार में प्यार के काबिल

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 156

थी। "अब्बा की खासी निगरानी की जाती थी। उन्हें ऐसी जगहों पर जाने और ऐसे काम करने से रोका जाता था जिसमें किसी भी खतरे की गुंजाइश होती थी।"[1] उपरोक्त उद्धरण से विदित होता है कि उच्चवर्गीय परिवार में एकलौता बेटा हो तो सारा परिवार उसे नजरों से ओजल नहीं होने देता है। वह बेटा अधिक लाड़ और प्यार का अधिकारी होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में पिता और रखैल पुत्र संबंधों का चित्रण भी हुआ है। कथा-नायक के माँ के पिताजी नाना को रखैल के द्वारा एक पुत्र होता है जो बड़ा होने के बाद नाना को हमेशा पैसों के लिए परेशान करता है। सआदत नाना को अपने साथ लेकर रिश्तेदारों और ऐसे मित्रों के पास लेकर जाता था जहाँ से पैसे मिल सकते थे। "नाना की उम्र इतनी हो गई थी कि सफर करने में बहुत तकलीफ होती थी लेकिन उन्हें, बसों, ट्रेनों, रिक्शों में सआदत के साथ भागना पड़ता था।"[2] उपरोक्त उद्धरण से विदित होता है कि रखैल- पुत्र और पिता में सिर्फ स्वार्थ का रिश्ता नजर आता है। उनके भावनिक या आत्मीक संबंधों की कोई गुंजाईश नहीं होती है।

आज नौकरी अहं समस्या बन गई है। नौकरी के लिए शहर में जानेवाले पुत्र और घर में अकेले रहने के लिए मजबूर पिता की व्यथा उपन्यास में खास तौर पर उभरकर आई है। कथा-नायक और उनके भाई शिक्षा पूरी होने के बाद नौकरी के लिए शहर में जाते हैं। अब्बा मियाँ की मौत के बाद इतने बड़े घर में अब्बा और अम्मा अकेले रह जाते हैं। अब्बा अपने दोनों में से एक लड़के को घर लाने की कोशिश करते हैं, ताकि घर उजड़ने से बच जाए। लेखक का कथन है- "अब्बा को फिक्र ड्योंढ़ी की थी। बाप-दादा का घर उजड़ने को था।"[3] किंतु दोनों बेटे शहर में से अनेक संभावनाओं भरी जिंदगी छोड़कर घर आना पसंद नहीं करते। खानदानी घर के अंधारमय भवितव्य से अब्बा की व्याकुलता बढ़ जाती है- "वे कहते थे कि पुरखों की ड्योंढ़ी वीरान हो जाएगी। वे चाहते हैं कि मरते वक्त उन्हें यह यकीन होना चाहिए की यहाँ गधे नहीं लौटेंगे।"[4] अम्मा की मृत्यु के बाद बेटों के प्यार से वंचित, अकेले रहने के लिए अभिशप्त अब्बा की घुटनभरे वातावरण में मृत्यु हो जाती है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 40
2. वही, पृ. 223
3. वही, पृ. 232
4. वही, पृ. 200

3.2.3 बदलते समाज में बूढ़े -

भारतीय समाज-रचना में बूढ़े आदमी सांस्कृतिक विरासत के जतनकर्ता माने जाते हैं। नई पीढ़ी पर संस्कार करना यह उनका धर्म होता है, लेकिन काम की दृष्टि से वह परिवार पर बोझ होते हैं। आज की उपयोगितावादी प्रवृत्तियों के वृद्धि के कारण परिवार और समाज उस बोझ को ढोने के लिए तैयार नहीं है। परिणामस्वरूप आज बूढ़ों की दयनीय अवस्था परिलक्षित होती है। इसी दयनीय अवस्था के डर से ही भीष्म साहनी जी ने अपने आत्मकथ्य में लिखा है- ''मुझे मौत से डर नहीं लगता। अगर डर लगता है तो उस अंधेरी खोह से जिसमें हर बूढ़ा व्यक्ति दूनिया को छोड़ने से पहले जा पहुँचता है।''[1] उपरोक्त उद्धरण से विदित होता है कि बूढ़ा व्यक्ति बूढ़ावस्था में एकाकी, अकेले रहने से डरता है लेकिन दूर्भाग्यवश आज उनकी यही नियति बन गई है। असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में समाज में बदलती बूढ़ों की स्थिति का प्रचुर मात्रा में चित्रण किया है।

'सात आसमान' उपन्यास में लेखक के मुगलकालीन वारिस सैयद इकरामुद्दीन बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। मुगल बादशाह हुमायूँ के साथ वह ईरान से हिंदोस्तान आए थे। उनका रहन-सहन बहुत ही साधा था। उनकी उम्र सौ साल थी लेकिन जब वह लड़ाई के मैदान में उतरते थे तो आग बरसते थे। उनकी बहादूरी के बारे में लेखक लिखते हैं - ''वो जब मैदाने-जंग में तलवार चलाते थे तो लगता था कि जैसे सैकड़ों तलवारे चल रही हों।''[2] अतः कहना सही होगा कि सैयद इकरामुद्दीन जैसे बूढ़े जवान वर्तमान समाज में एक मिसाल ही है।

स्वातंत्र्यपूर्वकालीन बड़े जमींदार परिवार का सबसे बुजूर्ग व्यक्ति ही कुटुंब प्रमुख होता था। उसके हाथ में परिवार के सारे सुत्र होते थे। परिवार के हर सदस्य को उनके आदेश का पालन करना पड़ता था। परिवार का हर सुख-दुःख उनके ऊपर निर्भर होता था। 'सात आसमान' उपन्यास में रजी हुसैन खाँ जिन्हें सब 'हुजूर' कहते थे बहुत ही सादगीपूर्ण व्यवहारवाले आदमी थे। अपने बाप के विलासपूर्ण जीवन को लगाम लगाकर उन्होंने अपने पसीने से खेती को सिंचा। अपने दोनों बेटे जत्तन-मियाँ और सत्तन मियाँ की उन्होंने हद से ज्यादा परवरिश की किंतु हुजूर के बूढ़ापे

---

1. सं. कुसुम चतुर्वेदी - 'नया मानदंड', त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई-सितंबर, 2003, अंक-29, पृ. 4
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 52

में उनके न चाहने पर भी दोनों बेटे अलग रहते हैं जिसका हुजूर को बड़ा दुःख होता है। जायदाद बँट जाने और बेटे अलग होने की वजह से हुजूर की तरफ ध्यान देने के लिए कोई रह नहीं गया था। लेखक लिखते हैं- ''बेटों-बहुओं के पास फुरसत न थी। मुंशी-कारिंदे अब जत्तन मियाँ और सत्तन मियाँ के दरमियान बँट गए थे। उनको अब हुजूर के पास जाने की जरूरत न थी।''[1] इसी तरह हुजूर उस अंधेरी खोह में जा पहुँचते हैं जो भीष्म साहनी को अपेक्षित है। बूढ़ापे के अंतिम दिनों में तो उनकी दयनीय अवस्था हो जाती है जिसका चित्रण दृष्टव्य है- ''उनकी कोठरी में पेशाब की खारी और देसी दवाओं की सड़ी बदबू इस कदर रहती थी कि वहाँ बैठना मुश्किल हो जाता था।''[2] उपरोक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि संतान की परवरिश से ज्यादा उन पर किए गए संस्कार समाज में महत्त्वपूर्ण होते हैं। अच्छे और दृढ़ संस्कारों के अभाव में आज के बूढ़े लोग दयनीय अवस्था में जिने के लिए अभिशप्त हैं।

समाज में कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनके जीवन में किसी तरह की ध्येयनिष्ठा नहीं होती। मंजिल के अभाव में ऐसे प्रवृत्ति के लोग जीवनभर पथविहीन भटकते रहते हैं। 'सात आसमान' उपन्यास में नाना को ना वर्तमान की फिक्र है और न भविष्य की चिंता। लेखक लिखते हैं- ''नाना मस्तमौला किस्म के आदमी थे। कल की चिंता न करते थे। खाने के शौकीन थे और अच्छा खाने के लिए जमीनें, मकानात और दुकानें बेच डालते थे।''[3] स्पष्ट है कि ऐसे प्रवृत्ति के लोग बूढ़ापे में समाज के लिए बोझ बन जाते हैं। खाली हाथ आदमी बूढ़ापे में परिवार से, समाज से और अपने खुद के अंतर्द्वंद्व से ठोकरें खाने के लिए विवश हो जाता है।

3.2.4 बदलते समाज में युवा वर्ग -

युवा-वर्ग मानव-समाज की रीढ़ है। युवा पर ही समाज और देश का भविष्य निर्भर होने के कारण स्वामी विवेकानंद कहते हैं- ''हमें चाहिए सामर्थ्यशाली, तेजस्वी, आत्मविश्वासी और सच्चे दिल के युवा। ऐसे सौ युवक अगर मिल जाय तो विश्व में सचमुच क्रांति हो जाएगी।''[4] लेकिन दुर्भाग्यवश आज ऐसे युवक मिलना मुश्किल हो गया है। बदलती परिस्थितियों के कारण

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 74
2. वही, पृ. 75
3. वही, पृ. 207
4. स्वामी विवेकानंद - शक्तिदायी विचार, पृ. 12

आज का युवा वर्ग अध्यात्मीक से ज्यादा ऐहिक सुख में ही अपने जीवन की पूर्ति मानने लगा है। असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में इस बदलते युवा-वर्ग का प्रचुर मात्रा में चित्रण किया है।

असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में ज्यादातर सामंती उच्चवर्गीय खानदान के युवा वर्ग में आ रहे परिवर्तन का वास्तव चित्रण हुआ है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में जमींदार खानदान के युवा-वर्ग के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी होती थी। आय के अनेक स्रोत और पैसों की बहुलता के कारण यह युवा ऐहिक सुख की ओर आकृष्ठ दिखाई देता है। अहमद हुसैन खाँ बड़े जमींदार खानदान से संबंध रखते थे। वह पैसा बहुत खर्च करते थे। लेखक का कथन है- ''उनका हाथ खूब खुला हुआ था और बाहर की औरतों पर बेदरेग पैसा खर्च करते थे। वह उड़ाने खाने और ऐयाशी में दिन काटते थे। जागीर सलामत थी लेकिन पैसा जब पूरा न पड़ता था तो गाँव रेहेन रख देते थे और महाजनों के यहाँ से कर्ज आ जाता था।''[1] उपरोक्त उद्धरण से बिना श्रम के मिला धन और परंपरागत बूरे संस्कारों के परिणामस्वरूप उस कालीन युवा-वर्ग गलत रास्तों को अपनाते हुए दृष्टिगोचर होता है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में विरासत में मिली जायदाद पर आराम से जिंदगी बिताने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। यासिन मियाँ जीवनभर खाना-खाने और सोने के अलावा कुछ न करते हुए नजर आते हैं। लेखक उनके जीवनक्रम के बारे में लिखते हैं- ''वो सुबह उठकर चौराहे पर चले जाते थे। वहाँ चाय पीते थे और करीब दो घंटे बैठे गप्प-शप्प किया करते थे। इसके बाद लौट आते थे। मुश्ताक, अब्बू साब या किसी और के साथ बैठ जाते थे। इस तरह दोपहर हो जाती थी। दोपहर को खाना खाकर यासीन मियाँ सो जाते थे और चार बजे के करीब उठते थे। फिर चौराहे पर चाय पीने चले जाते थे। सूरज डूबने से पहले लौट आते थे और इससे-उससे गप्प मारते थे, रात का खाना खाते और सो जाते थे।''[2] उपरोक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि आज युवा वर्ग समय की कीमत को पहचान नहीं रहा है, जिससे समाज की प्रगति पर प्रश्नचिह्न उभर रहे हैं। सही मार्गदर्शन और नए पक्के संस्कारों के अभाव में वर्तमान युवा-वर्ग उद्देश्यहीन जिंदगी जिता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 62
2. वही, पृ. 27

आज के युवा-वर्ग को मनचाहे पैसे खर्च करने की आदत पड़ गई है, किंतु जब उन्हें पैसों की तंगी महसूस होती है तब वह कुप्रवृत्तियों को अपनाते हैं। कथा-नायक के नानाजी के खानदान का एक लड़का- दिलावर आगा पैसों की पूर्ति के लिए शहर के धीरू नामक गुंड़ के साथ दोस्ती करते हुए अनेक गैरकृत्य करता है। उसने ठेके पर हड़ताले तोड़ने का, किराएदारों से घर खाली कराने का धंदा शुरू कर दिया था। "वे महल के अंदर अपने हिस्से में दीवाली के दिन जुआ भी खिलवाने लगे थे जिसमें तगड़ी नाल निकलती थी। सब लोग काँपा करते थे कि देखो कब छापा पड़ता है।"[1] इस अंधी भागदौड़ में वह अपने घर के पारंपारिक मूल्यों, साधनों को भी नहीं भक्षता है। लेखक का कथन है- "उनके पास अपने वालिद के जो हथियार थे उन्हें कभी-कभार चौथियाई पर उठा देते थे। डाकू या बदमाश काम हो जाने के बाद चौथा हिस्सा और हथियार दिलावर आगा को वापस कर देते थे।"[2] अतः युवा वर्ग में बढ़ती ऐहिक सुख की लालसा के कारण परंपरागत नैतिक जीवन मूल्यों का ह्रास होता हुआ दिखाई देता है।

3.2.5 बदलते समाज में नौकर -

भारतीय समाज रचना में नौकरों को परिवार का एक सदस्य के रूप में मानने की परंपरा रही है। उपन्यासकार असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में कथा-नायक के दादाजी अब्बा मियाँ के घर हर काम के लिए अलग-अलग नौकर थे। अब्बू साब अब्बा मियाँ के बचपन के दोस्त थे। अब्बा मियाँ से एक बार मिलने के बाद कोई वहाँ से जाने का नाम ही नहीं लेता था। अब्बू साब भी एक दिन ऐसे ही आए थे "सोचा था मियाँ से मिलकर जाएँगे। लेकिन इस कुएँ का पानी पिया और पूरी जिंदगी यहाँ गुजार दी।"[3] वह कुआँ अब्बा मियाँ के सादगीपूर्ण व्यवहार का प्रतीक है। अब्बू साब को अब्बा मियाँ ने मुंशी बना दिया। अब्बा मियाँ के निजी और खास नौकर अँगनू थे। अँगनू की दो सबसे बड़ी विशेषताएँ थीं- "उनकी वफादारी पर कभी कोई शक नहीं किया गया और दूसरे उन्होंने कभी किसी काम से इनकार नहीं किया। सिवाय 'जी हाँ मियाँ' के उनकी

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 211
2. वही, पृ. 211
3. वही, पृ. 7

जुबान पर और कुछ न आता था।''[1] उपरोक्त उद्धरण से अँगनू की कार्यतत्परता दृष्टिगोचर होती है।

घर का काम करने के लिए मुश्ताक तो अब्बा मियाँ के मुकद्दमों की पैरवी के लिए शफी थे। अन्य कामों और पानी भरने के लिए बकरीदी था। बकरीदी जवान था इसलिए मुश्किल काम जैसे साँप वगैरा मारने का काम वह चालाकी से करता था। उसका मानना था कि साँप को मारने के बाद उसकी आँख कुचल देनी चाहिए क्योंकि ''साँप की आँखों में मारनेवाली की तस्वीर आ जाती है और फिर उसका जोड़ा वह तस्वीर देखकर बदला लेता है।''[2] स्पष्ट है कि नौकरों में अंधविश्वास और लोकविश्वास का प्रभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है। बकरीदी की माँ बावर्चीखाने में खाना पकाने का काम करती थी। अब्बा मियाँ का इक्का चलाने के लिए बौरा नाम का बूढ़ा था। इन घर के सारे नौकरों के प्रति अब्बा मियाँ का बर्ताव मानवतावादी दिखाई देता है। अब्बा मियाँ का घर के लोगों के लिए सख्त हुकूम था कि ''उनका कोई भी नौकर जब सो रहा हो तो उसे न उठाया जाए।''[3] उपर्युक्त उद्धरण से मालिक और नौकरों के अनपेक्षित संबंधों का परिचय मिलता है।

3.2.6 बदलते समाज में पागल -

असगर वजाहत के उपन्यास में कुछ पागल और सनकी आदमियों का व्यक्तित्व और उनके साथ किए जानेवाले व्यवहार का चित्रण कुछ मात्रा में हुआ है। 'सात आसमान' उपन्यास में कथा-नायक के नानाजी के घर में शादियाँ सभी आपस में एक-दूसरे के साथ करते थे ताकि जायदाद किसी बाहरवाले के पास न जाए। इसलिए उनके ज्यादातर बच्चों में कोई-ना-कोई व्यंग्य होता था। ''एक दो तो ऐसे पागल थे जिन्हें जंजीरों से बाँधकर रखा जाता था।''[4] कुछ सनकी आदमी भी थे। जैसे ''एक को सफेद कपड़े से डर लगता था, क्योंकि सफेद कपड़ा देखकर उन्हें कफन की याद आती थी।''[5] स्पष्ट है कि पागल और सनकी आदनियों का भावविश्व अलग

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 17
2. वही, पृ. 23
3. वही, पृ. 17
4. वही, पृ. 143
5. वही, पृ. 143

ही होता है। एक सनकी आदमी तो दिन में सौ-सौ सिगरेठ पीता था। एक आदमी ने तो अपनी मौत के दिन, तारीख और समय की घोषणा कर दी और मौत के दिन और समय का इंतजार करने लगे। नाना के एक भतीजे मज्जा आगा तो बिलकुल पागल थे। उन्हें कभी-कभी बाँधकर रखना पड़ता था।

शहंशाह आगा का तीसरा लड़का जानी मियाँ पागल था। उसके साथ घरवालों का बर्ताव बहुत ही दर्दनाक होता था। उस पर किए जानेवाले अत्याचार का चित्रण दृष्टव्य है- ''जानी मियाँ को नौकरों के साथ रखा जाता था। अक्सर गलतियों पर उसकी सख्त पिटाई होती थी। उसकी चीखें महल में गूँजती थीं। पता नहीं क्यों शहंशाह आगा उस पर जुल्म के पहाड़ तोड़ देते थे। वह इतना मारा जाता था कि जिस्म पर नील पड़ जाते थे। कई-कई दिन कोठरी में भूखा रखा जाता था।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि समाज में पागलों का स्वीकार करने और उनके साथ इंन्सानों जैसा बर्ताव करने की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती।

3.3 स्वातंत्र्योत्तरकालीन समाज की विशेषताएँ -

असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तरकालीन समाज का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। प्राप्त चित्रण के आधार पर स्वातंत्र्योत्तरकालीन समाज की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

3.3.1 शहरीकरण -

अंग्रेजी शब्द सिटी (City) का पर्यायवाची शब्द 'शहर' है। 'हिंदी विश्वकोश' में शहर का अर्थ इस प्रकार दिया है- ''अनेक लोगों का वासस्थान, मनुष्य की बड़ी बस्ती जो गाँव या कस्बे आदि से बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियाँ तथा पेशे के लोग रहते हो, शहर।''[2] स्पष्ट है कि शहरों का प्रमुख प्रमाप क्षेत्र और जनसंख्या ही है। असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में बढ़ते शहरीकरण की कारणमीमांसा और उसके अच्छे-बूरे परिणामों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

अर्थाभाव, दारिद्रय, बेरोजगारी आदि अन्य अनेक कारणों से गाँव के लोग शहरों की ओर आकर्षित होने लगे हैं। इस कारण ही शहरों की जनसंख्या बढ़ रही है। पिछले कुछ सालों

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 210
2. सं. नगेंद्रनाथ बसु - हिंदी विश्वकोश, पृ. 683

की तुलना में आज के शहरों की आबादी अनेक गुना बढ़ रही है। बढ़ती आबादी के कारण शहरों में गंदी बस्तियाँ फैलती जा रही हैं। कथा-नायक बूरे ढंग से बढ़ रहे अपने शहर के बारे में कहते हैं- ''यह छोटा-सा शहर इस बेढंगे, लापरवाह और गंदे ढंग से बढ़ रहा था जैसे किसी रोगी के शरीर पर फोड़े बढ़ते, फूटते और बहते हैं। गुंजान बस्तियों और कच्चे-पक्के घरों, गलियों और नालियों और गंदी तल्लियों के टुकड़े शहर के आसपास उभर आए थे।''[1] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि आजकल शहरों में रहना मतलब नरक समान है लेकिन मजबुरीवश आदमी शहर में रहता है। शहरवासियों की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई है।

शहर में बढ़ती आबादी के कारण मकान के लिए जगह की समस्या तीव्र हो गई है। जिसका फायदा वह लोग ले रहे हैं जिनकी जमीन शहरों में या आसपास है। 'सात आसमान' उपन्यास में कथा-नायक की खानदानी जमीन शहर के पास ही थी। जैसे-जैसे शहर बढ़ता गया वैसे ही अब्बा ने उस ''जमीनों की प्लाटिंग कर दी गई। प्लाट धड़ाधड़ बिकने लगे। किसी को ये उम्मीद नहीं थी कि बेकार पड़ी ऊसर ऊबड़-खाबड़ जमीनें इतने पैसे दे सकती है।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से शहरीकरण का किसी विशिष्ट वर्ग को ही फायदा हुआ परिलक्षित होता है।

शहर में रहनेवाले छोटे बच्चों-स्त्रियों पर शहर का इतना प्रभाव पड़ता है कि वह गाँव में रहना पसंद नहीं करते। कथा-नायक के बीवी-बच्चे बंबई शहर में अच्छी तरह से घुलमिल गए थे। कथा-नायक के अनुसार- ''बच्चे और पत्नी पूरी तरह बंबइया हो गए थे। जुहू तारावाले प्लैट के अलावा वे कहीं और रहने की बात सोच भी न सकते थे।''[3] फिर भी यह बात सच है कि गाँव के मिट्ठी से जुड़े लोग शहर में रहना पसंद नहीं करते। कथा-नायक जब अपनी माँ को बीमारी के इलाज के लिए बंबई ले जाना चाहते हैं तब माँ उसके प्रति विरोध प्रकट करती है। लेखक लिखते हैं- ''बंबई की एक इमारत की आठवीं मंजिल के किसी प्लेट के एक कमरे में पड़े रहने का खयाल उनको मौत से भी बुरा लगा।''[4] उपर्युक्त उद्धरण से शहरों में कमरों की घूटन का अंदाजा आ सकता है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 227
2. वही, पृ. 228
3. वही, पृ. 229
4. वही, पृ. 237

3.3.2 विकृत प्रवृत्तियों का उदय -

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज-रचना में स्पर्धा की होड़ और नीति-मूल्यों के अभाव में अनेक विकृत प्रवृत्तियाँ मानव में पनपने लगी हैं। 'सात आसमान' उपन्यास में समाज में पल रही कुछ विकृत मानसिकताओं का कुछ मात्रा में चित्रण हुआ है। बड़े आगा ने अपने घर को अच्छी तरह से सजाया था, लेकिन घर की बैठक में जो तस्वीरें लगाई थी उन्हें देखकर आश्चर्य होता था। ''हर तस्वीर में एक नंगी औरत को मारते-पीटते दिखाया गया था। एक तस्वीर में एक नंगी औरत के हाथ-पैर जंजीरों से बँधे थे और उसे कोड़ों से पीटा जा रहा था। एक दूसरी तस्वीर में एक नंगी औरत के लंबे बाल एक हब्शी खींच रहा था और वह दर्द से चीख रही थी। एक और तस्वीर में एक नंगी औरत का गला एक पहलवान किस्म का आदमी मरोड़ रहा था, औरत के चेहरे पर तकलीफ थी और आदमी मुस्करा रहा था।''[1] उपर्युक्त उद्धरण बड़े आगा के विकृत प्रवृत्ति का ही द्योतक है। कहना गलत न होगा कि हमारे सांस्कृतिक आदर्श इस तरह बदलते रहेंगे तो हमारी संस्कृति और संस्कारों की रक्षा करना मुश्किल हो जाएगा।

पुरानी पीढ़ी के लोग अपने वारिसों के पारंपारिक, सांस्कारिक अस्मिता और आदर्श नीतिमूल्यों का पालन तन्मयता से करते थे। लेकिन आज की नई पीढ़ी में अनेक विकृतियाँ उभर रही हैं जिससे नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। दिलावर आगा और दुलारे मियाँ के हो रहे नैतिक मूल्य-पतन का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं- ''दुलारे मियाँ को जुए का चस्का लग गया था तो शुजा आगा के बेटे दिलावर आगा बदमाश निकले थे। उनकी गुंड़ागर्दी की शुरूआत नौकरानियों की जवान लड़कियों के साथ बलात्कार करने की वारदातों से शुरू हुई थी।''[2]

समाज में जितने व्यक्ति होते हैं उतनी प्रवृत्तियाँ होती हैं। आज के समाज में अच्छी कम और बूरी प्रवृत्तियों का ही ज्यादा विकास हो रहा है। मुश्ताक ऐसे ही आदमी थे जिन्हें दूसरों को दुःख देने में मजा आता था। लेखक का कथन दृष्टव्य है- ''उन्हें लोगों को तंग और परेशान करने, सताने, किसी का होता काम बिगाड़ देने, लोगों को लड़वा देने, होते काम में टँगड़ी मार देने, धोखे से फँसा लेने और उल्लू बनाने में मजा आता था।''[3]

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 145
2. वही, पृ. 211
3. वही, पृ. 17

3.3.3 अतीत और वर्तमान की तुलना -

समय और काल किसी के हाथ में नहीं होता। उसमें सदैव परिवर्तन होता रहता है। अतीत और वर्तमान के सबसे बड़े साक्षी बुजुर्ग ही होते हैं। इस परिवर्तीत काल में अनेक ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जिससे बुजुर्ग आदमियों के सामने संभ्रम और आश्चर्य खड़ा होता है। 'सात आसमान' उपन्यास में कथा-नायक के दादाजी अब्बा मियाँ के बुढ़ापे में उन्हें बताया गया कि आदमी चाँद पर पहुँच गया है। इस बात पर वह यकीन न करते हुए कहते हैं- ''ये साले कहीं इधर-उधर उतर गए होंगे और कहते हैं हम चाँद पर पहुँच गए। चाँद पर कोई नहीं पहुँच सकता।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से अब्बा मियाँ की आधुनिकता के प्रति बेखबर वृत्ति और परंपरागत मानसिकता दृष्टिगोचर होती है।

बूढ़े लोग अपने अतीत को दिल के किसी कोने में रखकर उसकी स्मृतियों के सहारे जीते हैं। लेकिन जब वे अपने सुनहरे अतीत और निराश, घुटनभरी और लाचार वर्तमान जिंदगी की तुलना करते हैं तब उन्हें यह बदल दिल में कचोट पैदा करता है। नाना के भाई बड़े आगा को देखकर अंदाजा लगाना मुश्किल था कि कभी उनका भी सुवर्ण-काल था। अपनी युवावस्था में ऊँचे कपड़े तथा ऊँची घड़ियों के शौकिन बड़े आगा को आज चाय मिलना दुश्वार हो गया है। कथा-नायक के नानाजी भी ऐसे ही पात्र हैं। नाना कभी-कभी अपने जवानी की स्मृतियों में खो जाते हुए कहते थे कि ''लड़कपन में उन्हें दूध नहीं दिया जाता था। समझा जाता था यह नौकरों के पीने की चीज है। उन्हें सिर्फ मलाई दी जाती थी। नाना उन दिनों की तुलना अपनी हालत से करते थे और कहते थे अब उन्हें दूध पीना तो बड़ी बात, देखने को नहीं मिलता।''[2] भूतकाल और वर्तमान की तुलना करनेवाला नाना का उपर्युक्त कथन वर्तमान स्थिति का दर्पण है।

3.3.4 पुरानी निशानियों की टूटन -

मूल्य-विरहित जीवन जीनेवाले वर्तमान समाज के लोग किसी पौराणिक निशानियों का महत्त्व नहीं जानते हैं। वे स्वार्थवश उन निशानियों का दुरुपयोग करते हैं, जिससे समाज की

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 194
2. वही, पृ. 208

सांस्कृतिक विरासत को बहुत बड़ा धक्का पहुँच रहा है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में इस दर्द को वाणी दी है।

पूर्वजों ने दुर्लभ धैर्य और आत्मीयता से विशाल भवन खड़े किए हैं। वह भवन या महल ही नहीं तो उनके जीवन की निशानियाँ हैं। कथा-नायक के वारिस मौतुमुद्दौला ने खरीदी सफेद कोठी, महल और बाग उनके प्रतापी, जिद्दी और मूल्य-केंद्रित जीवन की निशानियाँ हैं। लेकिन वर्तमान पीढ़ी ने उन निशानियों की इतनी विड़ंबना की है कि, वह अब शापित-सी लगती है। महल के बैठकों का चित्रण करते हुए लेखक कहते हैं- ''बैठकें आम तौर पर जूते के कारखानेवालों ने किराए पर ली थीं और पूरी सफेद कोठी में रात-दिन जूते बनते थे। चमड़ा-पीटने की आवाजें गूँजा करती थीं और चमड़े की बदबू बसी रहती थी।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से महल के लोगों में श्रम के बिना पैसे कमाने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। जिसके कारण वह अपने पौराणिक वास्तु के पावित्र्य के प्रति ध्यान नहीं दे रहे हैं।

कथा-नायक के पिताजी भी अपने जमींन में स्थित पुराना मकबरा तोड़ते हैं जिससे उस जमीन में दुकानें और मकान बन सके। ''जब मकबरा तोड़ा जा रहा था तो एक-दो लोगों ने दबी जुबान से कहा भी कि पुरखों का मकबरा भी कोई तुड़वाता है ?''[2] इस तरह असगर वजाहत ने उपन्यास के द्वारा बदलती वर्तमान पीढ़ी में स्वार्थ और ऐयाशी के लिए अपने पूर्वजों के निशानियों की विड़ंबना करनेवाली नई पीढ़ी का वास्तविक दस्तावेज सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है।

3.3.5 ***भ्रष्टाचार*** –

स्वातंत्र्योत्तर काल में 'भ्रष्टाचार' शब्द सर्वपरिचित हो गया है। प्राचीन काल से भ्रष्टाचार चल रहा है। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर काल में हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की व्यापकता बढ़ रही है। डॉ. कृष्णकुमार बिस्सा के अनुसार- ''कोई भी ऐसा विभाग नहीं है जहाँ कोई भ्रष्टाचारी नहीं हो। बिना रिश्वत दिए काम को संपूर्ण कराना कल्पना से परे की बात हो चुकी है। वर्तमान में किसी कार्य को संपूर्ण कराने के लिए नीचे से लेकर ऊपर तक व्यक्ति को प्रसन्न किया जाना आवश्यक

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 208
2. वही, पृ. 184

होता है ।''[1] स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार की इस बढ़ती व्याप्ती के परिणामस्वरूप समाज में अनेक समस्याओं का निर्माण हो रहा है।

असगर वजाहत का बहुचर्चित उपन्यास 'सात आसमान' में स्वातंत्र्योत्तरकालीन समाज में पुलिस, बिजली अधिकारी, विविध कार्यालयीन अधिकारी आदि की भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है। कथा-नायक के पिताजी अपने बेटों के नाम पर जमींन करना चाहते हैं। सभी कागजातों की पूर्तता होने पर भी कई महीने तक यह काम घसीटता रहा। लेखक लिखते हैं- ''सब जानते हैं ये काम लिए-दिए बिना नहीं होता। पटवारी, कानूनगो, नायब साहब सभी को कुछ-न-कुछ दिया गया तो चार-पाँच महिने में काम हो पाया।''[2] अब्बा जब खेती में बिजली लाना चाहते हैं, तब कनेक्शन जल्दी न जोड़ने के कारण त्रस्त हो गए थे। कई सालों तक बिजली विभागवाले कोई कार्रवाई नहीं कर रहे थे। अंत में अब्बा ने खुलकर पूछने पर बताया गया कि ''सबको मिलाके चार हजार पड़ेगा यानी असिस्टेंट इंजीनियर से लेकर इंस्पेक्टर और लाइनमैन तक का हिसाब इसमें हो जाएगा।''[3] उपर्युक्त कथन से कार्यालयीन व्यवस्था में चलता श्रृंखलाबद्ध भ्रष्टाचार दृष्टिगोचर होता है। आदमी को भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के इन अधिकारियों को रिश्वत देकर ही काम करवाने पड़ते हैं।

पुलिस व्यवस्था में भी भ्रष्टाचार दृष्टिगोचर होता है। कथा-नायक के घर में काम करनेवाले मुश्ताक पहले पुलिस में सिपाही थे। ''पुलिस की नौकरी में उनकी पाँचों ऊँगलियाँ घी में थीं।''[4] पुलिस व्यवस्था में भ्रष्टाचार का स्वरूप केवल घूस या कमीशन तक ही सीमित नहीं। भ्रष्टाचार का स्वरूप और भी व्यापक है। मुश्ताक और एक पुलिस एक दिन ड्यूटी पर थे। एक चोर घर के दीवार में सेंध लगाकर घर के अंदर चोरी के लिए घुस गया। यह दोनों पुलिस चोर को बिना कुछ कहे सेंध के पास छुपकर बैठ गए। मुश्ताक कहता है- ''कोई आधे घंटे बाद उसने सेंध के रास्ते एक पोटली बाहर फेंकी। हमने पोटली उठाकर धर ली। उसके बाद उसने टाँगें बाहर निकालीं तो हम दोनों ने उसे पकड़कर बाहर खींच लिया। उसकी तलाशी ली। हजार रुपया साले

---

1. कृष्णकुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, पृ. 154
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 175
3. वही, पृ. 193
4. वही, पृ. 22

ने लँगोट में उड़सा हुआ था। वह ले लिया। पोटली में जेवर थे। वे ले लिए और उस साले से कहा, चल थाने। वह हाथ-पैर जोड़ने लगा, तो मैंने उसकी गाँड़ पर दो लात मारी और वह भागता चला गया।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से यह परिलक्षित होता है कि केवल नकद रुपए स्वीकारना ही भ्रष्टाचार नहीं तो चोरी का माल उड़ाना आदि भ्रष्ट व्यवहार भी भ्रष्टाचार है। वर्तमानकाल में तो भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार माना जा रहा है। इसलिए इस काल को अगर 'भ्रष्टाचार युग' से संबोधित किया जाए तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बढ़ती हुई भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के कारण समाज को अनेक आर्थिक और मानसिक समस्याओं से त्रस्त होना पड़ता है।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत अध्याय के विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं वे इस प्रकार हैं-

1. उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में समाज के विविध पक्ष और उनमें आ रहे परिवर्तन को उद्घाटित किया है। समाज की विभिन्न विशेषताओं को उजागर करना भी उनके उपन्यास का प्रतिपाद्य रहा है।
2. भारतीय मानव के सामाजिक जीवन में धार्मिक क्षेत्र बहुत ही संवेदनशील नजर आता है। बदलते समाज में धार्मिक एकता का प्रयास चाहे वह परिवार जैसे सीमित क्षेत्र से ही सही, शुरू हुआ परिलक्षित होता है।
3. स्वातंत्र्योत्तर काल में अर्थ पर आधारित वर्ग संरचना का निर्माण हो रहा है। उच्चवर्गीय लोग भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न दिखाई देते हैं। यह लोग समाज के लिए होनेवाले अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन दृष्टिगोचर होते हैं।
4. समाज में न्याय-व्यवस्था उच्चवर्गियों के हाथ की कठपुतली बन गई है। न्याय-व्यवस्था में अपराधियों को बचाने के लिए हमेशा एक विशिष्ट वर्ग तैयार होता है जो सच को झूठ और झूठ को सफेद सच साबित करने के लिए तत्पर होता है। प्राचीन काल की तुलना में आज की न्याय-व्यवस्था कमजोर दिखाई देती है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 22

5. बदलती शिक्षा-व्यवस्था अमीरों के मनमौजीपन तथा दबाव के कारण अपने तत्त्वों से हठ रही है। जिससे शिक्षा जैसे क्षेत्र का पावित्र्य और मांगल्य खतरे में आ रहा है। शिक्षा क्षेत्र का संचालन एक विशिष्ट वर्ग के हाथ में होने के कारण निम्नवर्गीय लोग शिक्षा से वंचित हो रहे हैं।
6. स्वातंत्र्योत्तर काल में पति-पत्नी के अधिकारों में समानता आ रही है। आज पत्नी अपने पति के कंधे-से-कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में प्रगति कर रही परिलक्षित होती है।
7. बदलते समाज में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के पनपने के कारण बूढ़ों की घोर उपेक्षा हो रही है। ऐसे व्यक्ति अपने अतीत की सुवर्णमयी घटनाओं से विव्हल नजर आते हैं।
8. आज का युवा-वर्ग ध्येयहीनता के कारण भोगवाद की ओर आकर्षित हो रहा परिलक्षित होता है।
9. बदलते मानव समाज में नौकरों के साथ अच्छा बर्ताव करने की पद्धति रूढ़ हो रही है, लेकिन पागल आज भी अमानवीय, क्रूरतापूर्ण व्यवहार और अत्याचार से पीड़ित जीवन जीते हुए परिलक्षित होते हैं।
10. स्वातंत्र्योत्तरकालीन समाज के अमीरों में अधिक अमीर बनने की होड़ लगी है। परिणामतः वह अपने परंपरागत मूल्यों को भूल रहे हुए दिखाई देते हैं।
11. शहरों में रहनेवाले लोगों की आबादी में निरंतर वृद्धि हो रही है, जिससे शहरों का सामाजिक और पारिवारिक स्वास्थ्य बिगड़ता हुआ परिलक्षित होता है।
12. नई पीढ़ी कम श्रम और कम समय में अधिक पैसा कमाने के पक्ष में है। जिससे समाज में विकृत प्रवृत्तियों के साथ-साथ अनेक नई समस्याओं का उद्भव हो रहा है।
13. वर्तमान समाज में औद्योगिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में अमुलाग्र विकास हो रहा है। लेकिन यह विकास मूल्य-विरहित दृष्टिगोचर होता है। इस विकास को अगर मूल्यों का आधार मिल जाए तो भारतीय मानव के सामाजिक जीवन का भविष्य हमेशा दैदिप्यमान और उज्ज्वल रहेगा इसमें संदेह नहीं।